आँसू

आलोचना

उत्तर प्रदेशीय सरकार
के
साहित्य पुरस्कार
के लिये-

प्रेषक :- राजीव
प्रकाशक

'शैदा', आजमगढ़

(आलोचना)

प्रकाशक—
कृष्ण मोहन लाल अस्थाना 'राजीव'
अनन्तपूरा, आजमगढ़।

मुद्रक
प्रभात प्रिंटिंग व
आज , है

आँसू (व्याख्यात्मक आलोचना)

स्वर्गीय बाबू जयशंकरप्रसाद की सिद्ध रचना

"आँसू" की समीक्षा

लेखकः—

विश्वनाथ लाल "शैदा"

आजमगढ़

प्रकाशकः—

कृष्ण मोहन लाल अष्ठाना "राजीव"

अनन्तपुरा, आजमगढ़

प्रथमबार १०००

नववर्ष प्रतिपदा सम्बत् २०११

मूल्य २॥)

मुद्रकः—

प्रभात प्रिंटिंग क

आजमगढ़

भूमिका

स्वर्गीय बाबू जय शंकर प्रसाद "छायावाद युग" के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनका प्रबन्ध-काव्य "कामायनी" सर्व-सम्मति से युग काव्य घोषित हो चुका है। "कामायनी" के प्रकाशन के दस वर्ष पूर्व "आंसू" का प्रथम संस्करण साहित्य सदन, चिरगांव, झांसी से प्रकाशित हुआ, था किन्तु "आंसू" का द्वितीय संशोधित, परिवर्द्धित एवं नूतन-क्रम-बद्ध संस्करण "कामायनी" के दो वर्ष पूर्व १६३३ में छपा। सन् १६३३ में ही उनकी काव्य-पुस्तिका "लहर" भी प्रकाशित हुई। श्री किशोरी लाल गुप्त ने अपनी पुस्तक "प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन" में "आंसू" के पूर्वार्द्ध को "भावना युग" तथा उत्तरार्द्ध को "चिन्तन युग" की उपज माना है। इसी "चिन्तन युग" में "कामायनी" भी लिखी गई। यदि यह सत्य है कि कविता का उत्कर्ष केवल वस्तु-जगत की परम्परा-जन्य-मान्यताओं से दूर एक कल्पित स्वर्ग की सृष्टि ही करना नहीं है वरन् वस्तु जगत की गोद में उस कल्पित स्वर्ग को ला बिठाना है, तो यह मानना अनिवार्य होगा कि कविता के लिए यथार्थ और आदर्श का मेल अनिवार्य है। "भावना और चिंतन" के मेल से ही कवि सत्य के अनुशीलन में समर्थ होता है और हमारे सामने एक ऐसा जग उपस्थित कर देता है जहां पुरुष प्रकृति, प्रेम, सुन्दरता, जीवन, मृत्यु आदि का आनुगुण्य दर्शन हो जाता है। इस दृष्टि से "आंसू" प्रसाद की श्रेष्ठतम रचना है। कामायनी में चिंतन की अधिकता है, उसमें हृदय पक्ष निर्बल है। कामायनी की भाषा में भी वह प्रवाह, वह माधुर्य, वह प्रसाद नहीं, जो "आंसू" में। सच तो यों है कि "आंसू" प्रसाद की सिद्ध रचना है। उसके वरण वरण चरण चरण में उनके प्राण बसते हैं। उसके छंदों में उनकी आत्मा

की झंकार है। उसकी वाक्‌सरणि में उनके मनोभावों का प्रवाह है, तो उसकी छंद-विच्छिन्ति में उनकी वांछाओं का विराम। संपूर्ण काव्य के पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे उसमें उनकी मनोव्यथा अंकित है। इस मनोव्यथा की छाप उनकी सभी कृतियों पर है किंतु वह इतनी सजग और कहीं नहीं जितनी 'आँसू' में। इस मनोव्यथा का कुछ रहस्य प्रसाद के कहानी-संग्रह 'छाया' से खुलता है। उसके समर्पण में अङ्कित है, "जिसकी छाया मानस में उदय रहती है उसी की पवित्र स्मृति में अंकित"। छाया १९१२ की कृति है। उस समय प्रसाद की अवस्था २३ वर्ष की थी। आंसू की पक्तियों पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि यह छाया "स्थूल" की थी। "आंसू" की प्राण प्रतिष्ठा एक दुर्बल मानव के "मोह" से होती है।

वह एक अस्थि चर्म युक्त रूपमाधुरी से संबन्ध रखता है। आनन्द विभोर हो उसे अपनी भावना का भगवान बनाता है। मिथ्या जग में उसे सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की प्रतिमूर्ति मान बैठता है। कुछ कारण बस उसका उस रूप-माधुरी से बिछोह होता है और वह वियोग–वेदना से पीड़ित होकर क्रन्दन करने लगता है उस मधुपायी की भांति जिसका नशा टूट गया हो। रूप का मोह सब मोहों से प्रबल होता है। बासनाओं की सृष्टि का रहस्य समझने वाले जानते हैं कि रूप का मोह प्रायः संभोग से प्रशामित नहीं होता है। वरन वियोग में वह याद की कसक बनकर अस्थायी को स्थायित्व प्रदान करने के पावन कृत्य में लगता है। धीरे धीरे मोह में परिवर्तित होता है। प्रेम की साधना "विवश अपरा [illegible] में "सद्‌वृत्ति" जगाती है। साधना स्वयं साध्य बनती [illegible] है

अपने उन आनन्द कणों को जिन्हें उसने अपनी प्रेयसि में
द्रत किया था, प्रकृति के कण कण में बिखरा देखता है।
ेम का निस्सीम रूप देख वह आनन्द मग्न हो जाता है।
के नव जाग्रत मनोभाव प्रेम, वेदना, और जीवन का समन्वय
ते हैं और उसे व्यक्तित्व की सार्थकता परमार्थ चिन्तन में
ाई पड़ती है। उसका अल्प भूमा को परिधि छूता है और
वह भोगोपरत निष्काम विश्व-प्रेमी आस्थाओं द्वारा कल्पना के
सहारे उन तथ्यों से आंख मिचौनी करता है जो शरीरी को अशरीरी
बनाकर प्रियता अप्रियता की परिधि से बाहर खींच लाते हैं।
"आंसू" काव्य प्रेम की प्रक्रिया से पूर्ण रूपेण सजा हुआ है।
तमर्जानत मोह किस प्रकार उत्सर्ग शीला सात्विकी प्रवृति के
हाथों प्रेम में परिणत होता है उसकी संभृत काव्य मय झांकी
आंसू में मिलती है। मानव रुचिकर से प्रीति करता है अरुचि-
कर से दूर भागता है। किन्तु जब उसे बोध हो जाता है कि
प्रिय अप्रिय का द्वंद एक ही वस्तु के दो चित्र हैं तब वह प्रत्येक
वस्तु में अपनी सौन्दर्य-बुद्धि स्थिर करता है। इस भांति उसे
जगत की प्रत्येक वस्तु में चिर-सुन्दर की छाया दिखायी पड़ती
है। बिश्व वैचित्र्य का संपूर्ण रूप उसके प्रेम का विषय बनता
हैं। इस प्रकार उसकी ऋषि चेतना अनुभव करती है कि संसार
की सभी वस्तुयें एक आनन्द ही की विवर्त हैं। "आंसू' काव्य
इसी आनन्दानुभूति का प्राकाम्य चित्रण हैं। इसी से वह
'आनन्द' छंद में लिखा भी गया है। प्रसाद के "आनन्दभाव"
को समझने के लिये कामायनी का निम्नांकित छंद सहायक
होगाः—

"चिति का स्वरूप यह नित्य जगत
वत रूप वदलता है शत शत

कथा विरह मिलन मय नित्य विरत
उल्लास पूर्ण आनन्द सतत"

प्रसाद के आनन्दवाद के कण आंसू की प्रत्येक पं
हैं। "रसो वैसः" की पूत अनुभूतियों ने "आंसू" को सर्व
बना दिया है। साहित्यिक-रचना केवल वैयक्तिक लोल लालस
अथवा मनोरम भावों का ही चित्रण नहीं होती वरन उसम
"साधारणी-करण" के जौहर बसते हैं जिनके सहारे पाठक
तथा श्रोता कवि के व्यक्ति से अपने मानव का तदात्म्य स्थापित
करता है। भाव, विभाव अनुभाव तथा संचारी भाव की
काव्यमय अभिव्यक्ति की सत्ता अपना व्यक्तित्व तभी स्थापित
कर पाती है जब वह वासनायुक्त सभ्यों को रसास्वाद करा सके।
"आंसू" इस दृष्टि से भी एक सफल साहित्यिक रचना है।
"आंसू" के "भाव-पक्ष" पर मनन करने में उपयुक्त सभी बातें
सहायक होंगी।

जैसा ऊपर लिखा गया है "आंसू" बिरह-काव्य है। आंसू
का धागा उस प्राण की कसक से बंधा है जिस प्राण के लिए
"मानस का सब रस पीकर, लुढ़का दी तुमने प्याली" एक प्रहे
लिका है। प्रश्न समाधान तक पहुँचता है। संभोग-प्रशमित-मोह
तथा चिर जाग्रत चिर अतृप्त प्रेम का अन्तर आप ही आप
पर उतरता है। यह क्यों और कैसे होता है इसपर अनुभ
व्याख्या करते समय प्रकाश डाला गया है।

आज के युग में प्रसाद की कृतियों का बड़ा सम्मान है
विश्वविद्यालयों, कालेजों तथा स्कूलों में उनके साहित्य का पठन
पाठन होता है जिसके कारण आज प्रसाद के काव्य पर प्रचुर
आलोचना साहित्य प्राप्य है। ये आलोचनायें उनके समस्त
काव्यों पर सामूहिक रूप से हुई हैं। केवल 'कामायनी' पर

आंर
तंमान्त्र रूप से भी अनेक आलोचना पुस्तकें लिखी जा चुकी
था। किन्तु आंसू पर अलग से कोई भी आलोचना ग्रन्थ अभी
नहीं लिखा गया। प्रसाद के काव्य पर जो आलोचन हुई
वर सी में आंसू पर भी विचार विवेचन हुआ है। आंसू पर जो
ो लोचना सामग्री अभी तक आई है उसमें निम्नांकित पांच का
महत्व है:—

१—शुक्ल जी ने अपने इतिहास में प्रसाद काव्य पर विचार करते हुये आंसू पर भी विचार किया है। शुक्ल जी ने जो कुछ भी इस सम्बन्ध में कहा है वह नितान्त भ्रामक है कारण कि उनके सारे निष्कर्ष आंसू के प्रथम संस्करण पर निकले हुए प्रतीत होते हैं। सत्य होते हुए भी अब उनकी संगति आंसू के वर्तमान संस्करणों से नहीं बैठती। शुक्ल जी का एक अभिमत यह है कि, "वेदना की कोई एक निर्दिष्ट भूमि न होने से सभी पुस्तक का कोई एक समन्वित प्रभाव नहीं निष्पन्न होता पर अलग अलग लेने पर उक्तियों के भीतर बड़ी ही रंजन कारिणी कल्पना, व्यञ्जक चित्रों का बड़ा अनूठा विन्यास, भावनाओं की अत्यन्त सुकुमार योजना मिलती है"। कहना न होगा कि वर्तमान संस्करण में निर्दिष्ट भूमि तथा समन्वित प्रभाव दोनों ही विद्यमान हैं।

२—नन्ददुलारे वाजपेयी ने "जयशंकर प्रसाद" नामक ग्रंथ के, "आरम्भिक काव्य विकास" शीर्षक अध्याय में परम सहानुभूति पूर्वक विचार किया है और कहा है कि आंसू मानवीय हैं, इसे कवि का आत्मस्वीकार भी कहा जा सकता है। इसका काव्य वैभव स्वयं इतना उच्च है कि इसे रहस्यवाद के आवरण की आवश्यकता नहीं है। विजय शंकर मल्ल ने अपने एक निबन्ध में इस मत का और भी तर्क पूर्ण प्रतिपादन किया है।

३—रामरतन-भटनागर का "कवि प्रसाद, एक अ.त का आंसू की दृष्टि से इस लिए महत्व पूर्ण है कि इसमें अ.तमें छन्दों की (प्रथम संस्करण के छंदानुक्रम से) एक एक भी व्याख्या की गई है, यद्यपि यह अत्यन्त संक्षिप्त है। अभी गी-

४—विनय मोहन शर्मा का, "कवि प्रसाद, आंसू और ... कृतियां" भी आंसु की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्यों कि इस ग्रंथ में आलोचक "आँसू" को पुस्तक के नामकरण में ही महत्व देता प्रतीत होता है। शर्मा जी ने "आंसू" के छन्दों की व्याख्या संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण के छन्दानुक्रम से कर दी है। यह आंसू को समझने का दूसरा प्रयास है। यह व्याख्या भटनागर जी की व्याख्या की अपेक्षा विस्तृत एवं पूर्ण है फिर भी दोनों ही ग्रन्थों में किसी नवीन दृष्टिकोण की स्थापना नहीं हुई है और कवि भावों को यथोचित समझने समझाने का पूर्ण प्रयास भी नहीं किया गया है।

५—किशोरी लाल गुप्त का "प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन", आंसू के आलोचनात्मक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। शुक्ल जी ने आंसू के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उसका तर्कपूर्ण उत्तर इस ग्रथ में दिया गया है। लेखक ने पूर्व एवं पश्चात्र पाठों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुये संशोधनों तथा छन्दक्रमों के नवीन न्यास की विशेषताओं का उल्लेख भी किया है और यह भी सिद्ध किया है कि आंसू में एक निर्दिष्ट भाव भूमि है और उसका समन्वित प्रभाव पड़ता है। सभी छन्द मुक्त होते हुये भी अनुस्यूत हैं। लेखक ने आंसू को पूर्ण रूपेण मानवीय एवं लौकिक माना है और यह भी लिखा है कि आंसू, हृदय की प्यास का एक लबालब प्याला है। उनके अनुसार

"आंसू" में मानव की व्यक्तिगत वेदना तथा जगत वेदना ही वर्तमान है और उसमें अध्यात्मिक वेदना ढूंढ़ने का हठ करना यथार्थ नहीं।

इतना होते हुए भी आंसू ऐसे महत्व पूर्ण काव्य ग्रन्थ पर स्वतंत्र रूप से कोई आलोचनात्मक पुस्तक न थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई।

कारण विशेष से नेत्रों से जलपात होने का नाम अश्रु है। विषाद के आंसू, अमर्ष के आंसू, मान के आंसू, हठ के आंसू आदि जिस प्रकार के भी आंसू हों, उनकी सृष्टि सात्वकी है। कारण कि इन सबके पीछे प्रेम की ही लीला है। ["अरी बीर बर्जत कहा रुदन करन दे मोहिं। सजल नयन जल ही सकल हिय दुख हरुये होंहि"। "रोये हम यास में उस रंग का रोना कैसा। पानी हो हो के बहा खूने तमन्ना कैसा"]। आंसू की प्रकृति में प्रेम का उन्माद होने से ही 'करुण' को रस मानने पर आचार्य लोग विवश हुये। ["क्या जख्मे मुहब्बत है कि राहत नहीं जाती आंखें तो हैं नम दिल की मुसर्रत नहीं जाती"]

द्वन्द्वात्मक संसार में परस्पर विरोधी शक्तियों में अनुकूलता के जौहर जगाने का श्रेय प्रेम को है। वही ममता की हानि उठाकर सुख दुख में मेल कराने में समर्थ होता है। अश्रु इसी प्रेम का विवर्त है। उसमें इस द्वन्द्व को ढक कर ऐक्य स्थापित करने की शक्ति है, तभी तो आंसु वर्षा से सिंच कर दोनों ही कूल हरा हो कि कल्पना सार्थक बनती है। इस दृष्टि से आंसू का बड़ा महत्व है। यदि द्वन्द्वात्मक विश्व में व्यवस्थापित स्वर, ताल मय ऐक्य की सृष्टि एक रहस्य है तो आंसू की सृष्टि भी कुछ कम रहस्यमयी नहीं है। मिलन वियोग के द्वितमय भाव की प्रत्येक अवस्थिति पर अश्रु केवल आनन्द की ही सृष्टि करता है। वियोग सचमुच वियोग नहीं बल्कि उसका प्रतिभास

है। वियोग केवल कौतुक कार के मिलन इच्छा की सृष्टि है। "हबाबआसा मैं दम भरता हूँ तेरी आशनाई का। निहायत गम है इस कतरे को दरिया की जुदाई का"; पर मनन करने वाले जानते हैं कि बुलबुला समुद्र की गोद में है फिर वह दरिया से वियुक्त कैसे हुआ। प्रेमी प्रेमिका का द्वन्द्व भी इसी कौतुक की छाया है। रवीन्द्र बाबू के शब्दों में प्रेमी स्वयं प्रेमिका की छाया है। "रम्याणि वीक्ष्य" की व्याख्या आगे की गई है और वहीं यह बताया गया है कि अभावात्मक दुख में भावात्मक सुख किस प्रकार विराजमान रहता है। इस दृष्टि-कोण से यह ध्रुव है कि अश्रु के पीछे आनन्द भाव ही कौतुक करता है।

आंसू का प्रेमियों की दुनियां में एक विशेष स्थान सर्वदा से रहा है। काल के किसी अवस्थान पर विश्व साहित्य आंसू की विभूतियों से रिक्त नहीं। सामान्यतः वियोग के वर्णनों में आंसू सात्विक अनुभाव के रूप में ग्रहण किया गया है किन्तु आँसू पर स्वतन्त्र रूप से कोई पुस्तक कहीं लिखी गई है इसका पता ज्ञात साहित्य के इतिहास में नहीं है। प्रसाद का आंसू काव्य अपने ढंग का अनूठा ग्रन्थ है। मर्मज्ञों का कहना है कि ललित कलाओं में काव्य कला श्रेष्ठ है और काव्य कला में नाट्य कला। प्रसाद एक सफल नाटककार थे, यह ऊपर लिखा जा चुका है। यदि आप आंसू काव्य को सावधानी से पढ़ेंगे तो आपको अनुभव होगा कि आंसू काव्य में "नाटकान्तम कवित्वम्" की छाप है। गीति और प्रबन्ध के सरस मेल ने उसे विश्व का अनुपम काव्य बना दिया है। स्मृति के स्फुरण के साथ किस प्रकार कवि अतीत के दर्शन करता कराता है और साथ ही किस प्रकार उज्वल भविष्य की कल्पना करता है इसका अनुभव पाठक को कवि के साथ साधारणीकरण करने

की शक्ति देता है। "आंसू" काव्य नाट्य काव्य की मान्यताओं में 'स्वगत कथन है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कचदेवयानी शीर्षक कविता में जिस कला का प्रयोग कथोपकथन से किया है वही कला आंसू काव्य के वर्णन में सफलता से प्रयुक्त हुई है। आंसू की पक्तियों पर विचार करते हुये आगे इस ओर संकेत किया गया है।

आंसू उस युग का प्रतिनिधि काव्य है जिसे हम छायावाद कहते हैं। यदि यह कहा जाय कि आंसू से ही छायावाद का प्रादुर्भाव हुआ तो अयथार्थ न होगा। इलाचन्द जोशी ने तो मुक्त कण्ठ से घोषित किया कि आंसू की पक्तियों ने हिन्दी जगत को सर्व प्रथम उस वेदना वाद की मादकता से विभोर किया जिससे बाद का सारा छायावादी युग मतवाला हो उठा। आलोचकों का मत है कि आंसू के प्रकाशन ने छायावादी विचार धारा को स्थायित्व तथा मान्यता प्रदान कराया। मैं इस दृष्टिकोण से सहमत हूँ। स्वयं पंत ने 'प्रसाद" को ही छायावाद का जनक माना है।

इस सम्बन्ध में छायावाद के नाम करण पर विचार करने का मोह मैं संवरण नहीं कर पा रहा हूँ। छायावाद को मीमांसा करने वालों का कहना है कि छायावादी विचार धारा हिन्दी साहित्य में प्रसाद के अवतरण के कुछ पहले ही से आ गई थी। मैं इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं। छायावाद का साहित्य मेरी आंखों के सामने पनपा और मुरझाया। पल्लव तथा 'आंसू' के प्रकाशन के पूर्व हिन्दी साहित्य में छायावाद जैसी कोई वस्तु नहीं थी। यदि उसके तत्व कहीं विद्यमान भी थे तो उनका नाम करण नहीं हुआ था। मुझे भली भांति याद है कि सन २० और २५ के बीच कुछ कवि हिन्दी साहित्य में ऐसे आये जिनको उस समय के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों तथा साहित्य

सेवियों ने शंका की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। पं० राम नरेश त्रिपाठी ने हिन्दी कविता कौमुदी द्वितीय भाग की भूमिका में इस दृष्टिकोण को स्पष्ट प्रकट किया और लिखा, "तीसरी श्रेणी के कवि हिन्दी साहित्य में ऐसे आ रहे हैं जैसे वैष्णवों की बस्ती में कोई अंग्रेज आकर बस जाय। यद्यपि वैष्णवों की दृष्टि में वह परम उच्छृंखल और विचार हीन प्रतीत होगा पर वास्तव में वह वैसा नहीं होता। उसके भी आचार विचार नियम बद्ध होते हैं—हम इन नवागन्तुक कवियों का स्वागत करते हैं। इसमें से निराला और पन्त की कवितायें कविता कौमुदी में दी गई हैं। यद्यपि इस प्रकार की कवितायें हिन्दी में पहले पहल बाबू जयशंकर प्रसाद ने प्रारम्भ की थी। पर वे केवल मार्ग प्रदर्शक बने रहे। आशा है हिन्दी कविता कानन में यह विदेशी फूलों से सजी क्यारी भी अपनी शोभा बढ़ावेगी।" उस युग के सरस्वती के पन्ने साक्षी हैं कि उस समय के साहित्य सेवियों ने हमारे इन नवागन्तुक कवियों का समादर नहीं किया। उन्हें इन नये कवियों की कविता में अस्पष्ट भाव व्यञ्जना, छायाकलुषित भाषा तथा छायापरिछन्न विचार धारा मिली। उन्हें ऐसा लगा जैसे ये नये कवि अपनी प्रेरणा विदेशी साहित्य से ग्रहण कर रहे हों। इसी लिए उन्होंने वक्रोक्ति में इस नवीन काव्यधारा को छायावादी काव्यधारा का नाम दिया। किन्तु नवीनता को तो पुरातन के व्यंग सर्वदा अनुप्राणित करते आये हैं, हमारे नये कवियों ने अपने पूर्वजों के इस व्यंग को वरदान रूप में शिरोधार्य किया और छायावाद को एक नया अर्थ दे दिया। जिन लोगों को डा० सत्यप्रकाश के प्रतिबिम्ब नामक ग्रन्थ के पढ़ने का अवसर मिला होगा वे समझ सकते हैं कि हमारे कवियों ने छायावाद की विवृत्ति में क्या क्या जौहर जगाये और छायावाद के अन्तर्गत बिम्बवाद

आदि कितने नये वाद का परिचय दिया। पन्त की वीणा की वह भूमिका जो छपने पर भी जनता के सामने न आ सकी, यदि आज प्राप्य होती तो उपयुक्त सभी बातों पर प्रकाश पड़ता। यह एक स्वतन्त्र इतिहास है जिस पर पर्दा पड़ चुका है और किन्चित अब साहित्य जगत को उसका स्मरण भी नहीं है। छायावाद की पहली विजय तब हुई जब महादेवी वर्मा के नीहार की भूमिका हरिऔध ने लिखी।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है प्रेमिका स्वयं प्रेमी की छाया है, इस औपनिषधिक सत्य को सर्व प्रथम साहित्य क्षेत्र में रवि बाबू ने अपनी पुस्तक 'साधना' में स्थान दिया। हमारे नये कवियों ने इसी दृष्टिकोण को अपनाकर "छायावादी" साहित्य की सर्जना की। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि हमारे नये कवियों ने सौन्दर्य तथा प्रेम के कलगान की प्रेरणा बंगला साहित्य से ग्रहण की। यह भी सत्य है कि कुछ के मनन के पीछे अंग्रेजी फारसी उर्दू साहित्य की छाया भी है, किन्तु यह कहना कि छायावादी साहित्य केवल विदेशी अनुकरण है, भ्रमपूर्ण है। सूर तुलसी कबीर के बाद हिन्दी साहित्य में कुछ भी ऐसा नहीं जिसे हम विश्व साहित्य की निधि बता सकें। प्रियप्रवास तथा साकेत में भी वह क्षमता नहीं। किन्तु छायावादी युग के निराला, पन्त, महादेवी की कविता विश्व साहित्य में अपना स्थान रखती है ऐसा कहने में मुझे तनिक भी संकोच नहीं। प्रसाद के आंसू और "कामायनी" तो विश्व साहित्य की अमूल्य निधि हैं और हम केवल इन दो ग्रंथों को लेकर विश्व की किसी अन्य भाषा के काव्य साहित्य से टक्कर ले सकते हैं। मनन करने वालों से छिपा नहीं कि छायावादी साहित्य की अन्तिम परिणति औपनिषधिक विचार धारा से जा मिली। कहना न होगा कि आज तक औपनिषधिक विचार धारा की गहराई विश्व में और कहीं नहीं मिलती।

प्रसाद का आनन्द वाद, निराला का अद्वैत वाद, पंत की आत्मरति तथा महादेवी का सर्वात्मवाद, छायावादी साहित्य को स्थायित्व तथा अमरत्व देने में समर्थ हैं ऐसा मेरा विश्वास है।

छायावाद दर्शन की दुनियां में एक विशेष स्थान रखता है। छाया का दूसरा नाम माया है तभी तो कबीर ने गाया "छाया माया एक सम विरला जाने कोय। गता के पीछे फिरे, ठाढ़े सम्मुख होय। छन्दोग्योपनिषद् में इंद्रविरोचन और प्रजापति की आख्यायिका का प्रारम्भ जिस प्रश्न से होता है वह यों है:—'भगवन जो जल में सब ओर प्रतीत होता है और जो दर्पण में दिखाई देता है उनमें आत्मा कौन है।" यही प्रश्न डा० सत्य प्रकाश के 'प्रतिविम्ब' में मुखर हो उठा है "कर में एक मुकुर ले कर के, करलो अपना ही दर्शन। आनन के प्रतिविम्बों में तुम छिप जाओ हे चंचल मन"। प्रश्न का समाधान उसी आख्यायिका में यों हुआ है:—इन्द्र यह शरीर मरणशील ही है यह मृत्यु से ग्रस्त है, यह इस अमृत अशरीरी आत्मा का अधिष्ठान है। सशरीर आत्मा निश्चय ही प्रिय अप्रिय से ग्रस्त है। सशरीर रहते हुए इसके प्रिय अप्रिय का नाश नहीं होता, अशरीरी होने पर इसे प्रिय अप्रिय स्पर्श नहीं करते। योगिक क्रियाओं द्वारा मानव किस प्रकार इंद्रियातीत होता है। इसका दिग्दर्शन पातञ्जल योग दर्शन में करें। पूरी व्याख्या इस प्रसंग में सम्भव नहीं, आंसू की व्याख्या करते समय योग दर्शन के मोटे मोटे सिद्धांतों की ओर संकेत किया गया है। माया प्रतिविम्ब ईश्वर, 'छायेव यस्य भुवनानि दुगो' पर मनन करने वाले जानते हैं कि माया भगवान के साथ छाया के समान रहती हुई सृष्टि स्थिति और संहार करती रहती है। उपनिषदों में बताया गया है कि सब पदार्थों को बीज रूप प्राण ही उत्पन्न

दृष्टि में ब्रह्म का प्रतिभास विश्व है। वह समझता है लीलामय भगवान अपनी गुणमयी माया द्वारा अपने को छिपाये हुए है। अतएव वह माया को आवरण मानता है। मायाविनी माया सृष्टि की अनन्त शृंखला का विस्तार करती हुई ब्रह्मज्योति को इस प्रकार आच्छादित करती है कि स्रष्टा सृष्टि में तिरोहित हो जाता है। किन्तु छायावादी विश्वोपलब्धि के साथ उसकी भित्ति में ब्रह्मोपलब्धि पाता है और इसप्रकार जगन्माया परमसत्ता की छाया मूर्ति बनी उसी की अनन्त छटा से उद्भासित होकर उसी में निरंतर तिरोहित होती दिखाई पड़ती है। अतएव उसकी दृष्टि में जगन्माया गुणमयीमाया का स्वरूप सत्य प्रतीत होता है और उसी के आधार पर चलकर अथवा उसी को सब कुछ समझ कर अपनी साधना चलाता है और अपनी साधना से गुणमयी माया में मोहमयी माया, योगमाया, की आस्था जगाकर भक्ति साधना जगाता है। व्याख्या करते समय आगे इस प्रकरण पर पुनः प्रकाश डाला जावेगा।

मेरी धारणा है कि "छायावादी युग" की कवितायें विशेषतः उपर्युक्त विचार धारा से प्रभावित हैं। "आंसू" काव्य तो उपर्युक्त विचार धारा से पूर्णतः ओतप्रोत है।

मेरे कुछ मित्र कहा करते हैं कि काव्य को दर्शन से क्या करना? मैं उनसे केवल यही कहता हूं कि आप यदि दर्शन और फिलासफी में भेद नहीं समझते तो आप का सोचना यथार्थ है। किन्तु पाश्चात्य 'फिलासफी' शब्द सत्य की खोज, ज्ञान का प्रेम मात्र व्यञ्जित करता है। उसमें विद्या बुद्धि का विलास तर्क वितर्क की लीला है। किन्तु दर्शन तो "इन्द्रियातीय अतिमानसिक उपलब्धि" है। दर्शन उन तथ्यों का

समाहार करता है जिनका शाश्वत प्रबुद्ध ऋषिचेतन ने साक्षात्कार किया। किशोरी लाल जी ने अपनी पुस्तक "प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन" में लिखा है:- 'प्रसाद जी भारतीय साहित्य को भारतीय दर्शन से अनुप्राणित मानते थे। दर्शन के रस को साहित्य के रस का समानान्तर मानते थे।" मेरा भी दृष्टिकोण यही है। मेरा निश्चय अटल है कि प्रत्येक देश के साहित्य पर उस देश की संस्कृति, सभ्यता, दर्शन आदि की छाप होती है और होनी चाहिये।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है "छायावादी-साहित्य" का नाम करण वक्रोक्ति में किया गया किन्तु नये साहित्य के प्रवर्तकों ने इस नव उपाधि को नम्रता पूर्वक अपनाया। प्रसाद जी ने स्वयं छायावाद को समझाते हुये बताया कि "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश विदेश की किसी सुन्दरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूति से नयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद कहने लगे। बाह्य उपाधि से हटकर अन्तर हेतु की ओर कविकर्म प्रेरित हुआ। अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है। इस लावण्य को संस्कृत में "छाया" और "विच्छित्ति" के द्वारा कुछ लोगों ने निरुपित किया है। कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवती की लज्जा भूषण की तरह होती है। यह यौवन के भीतर रमणी सुलभ श्री की बहन ही है।......बाह्य की प्रवृत्ति आंतर की ओर चल पड़ी" प्रसाद की इस व्याख्या से पता चलता है कि छायावादी साहित्य की आधार शिला "वेदना" है जिसपर कवि आंतर में प्रतिबिम्बित भावोच्छ्वास की इमारत खड़ी करता है। "छाया' का एक अर्थ सुन्दरता भी है।

"रम्याणिबीक्ष्य" में कविगुरु कालिदास ने बताया है कि "यह जन्मान्तर से चला आया स्थिर भाव है जो सुन्दर वस्तुओं की उपस्थिति से चेतना में सजग होकर चिर-सुन्दर की प्राप्ति से होने वाली आनन्दानुभूति के लिये प्राणों को विकल कर देता है। वस्तु की उपस्थिति चेतना में जिस स्मृति को जागरित करती है वह आनन्द स्मृति होने से तो सुखद है किन्तु जब उसका सम्बन्ध आनन्द की आधार वस्तु के अभाव से होता है तो उस में दुःख की छाया भी आ जाती है।" दुःख की यही "छाया" वेदना है। इसी से मैं कहा करता हूं कि सौन्दर्य के माध्यम से चिर-सौन्दर्य की प्राप्ति की साधना ही छायावादी कविता का प्राण है। कला के माध्यम से भाव की सिद्धि को भी मैं छायावाद का अङ्ग मानता हूं। अंग्रेजी में जिसे "होम-सिक्नेस" कहते हैं वही छायावादी कविता की वेदना है। वेदना की टीस, अभाव का अनुभव ही छायावादी काव्यधारा को उसके पूर्ववर्ती काव्य से विलग करता है। छायावादी कवि अंग्रेजी के कवि कीट्स की भांति "Ever let the fancy roam for pleasure is never at home" कहता हुआ इस संसार से परे एक ऐसा संसार बसाना चाहता है 'जहां के हंसते विहंग ललाम, मृत्युछाया का सुन के नाम;' किन्तु उनके पूर्णत्व की खोज कल्पना के विलास तक ही सीमित रह पाती है। यहां भी वह 'छाया' ही छू पाता है। सत्य [illegible] उस से कल्पना में आंख मिचौनी होती है। किन्तु सत्य उसकी अनुभूति में सजग होकर उसमें कवि चेतना नहीं जगा पाता। अपूर्णत्व तथा अभाव का यह अनुभव किसी विषय तक सीमित नहीं होता, कभी वह चिर सुन्दर की खोज करता है तो कभी अमरत्व का पीछा करता है। कभी अतीत के ही पुनर्दर्श[illegible] करना चाहता है तो कभी कल्पित उज्ज्वल भविष्य के लि[illegible]

व्यग्र होता है। उसमें प्रत्येक दशा में एक विकलता होती है एक उद्विग्नता होती है जिसमें उसकी आत्मा की अतृप्ति उपरंजित होती है।

छायावाद की प्रारंभिक अवस्थाओं में कुछ लेखकों ने भ्रमवश छायावाद और रहस्यवाद में विभिन्नता स्थापित न कर पाने के नाते छायावाद और रहस्यवाद को एक मान लिया। इस भ्रम का कारण भी स्वयं छायावाद के प्रवर्तकों के कथन प्राकथन ही थे। स्वयं डाक्टर रामकुमार वर्मा जो मेरे सहपाठी हैं इस भूल में पड़ गये। 'साहित्य समालोचना' के पृष्ठ १२ पर आप लिखते हैं "सब से पहले हम छायावाद या रहस्यवाद "को लेते हैं"। उन्हीं के (पृष्ठ १३ पर अङ्कित) शब्दों में जब कवि स्वयं नहीं समझता कि "छायावाद" क्या है तो पाठकों से उसके समझने की क्या आशा की जा सकती है! डाक्टर नागेन्द्र ने अपनी पुस्तक "विचार और अनुभूति" के पृष्ठ ५८ पर छाया के विषय में तीन भ्रान्तियों का उल्लेख किया है। मैं उन्हें यहां दुहराना नहीं चाहता मेरा भी विश्वास है कि (१) छायावाद और रहस्यवाद में अन्तर है (२) छायावाद केवल विशिष्ट शैली नहीं वरन् स्वतंत्र विचारधारा है (३) छायावाद पाश्चात्य की रोमानी कविता से भिन्न है।

इसी सम्बन्ध में मैं 'रहस्यवादी" काव्य धारा के बारेमें भी अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। छान्दोग्योपनिषध ८—१—१ में आया है "अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्म पुरे दहरंद पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तरा का शस्तस्मिन् यदन्तस्त - दन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासित व्यमिति। (यह मानव शरीर ब्रह्म पुर है। इसके भीतर एक कमल कुसुमाकर गृह है। उसके

भीतर एक छोटा सा आकाश है। उसके अन्दर एक निगूढ़ रहस्य है। उसको जानना होगा। उसका अन्वेषण करना होगा" सत्यानुसन्धान ब्रह्मानुसंधान या आत्मानुसंधान की प्रवृत्ति रहस्यवाद का प्राण है। रहस्यवादी की दृष्टि उपरागों पर नहीं वरन् उसके कारणभूत छायावान पर होती है। उसकी मनन शैली का आधार विचार की अनुलोम गति, तर्क की आगमन शैली, होती है। उसकी सम्यक प्रबुद्ध ऋषि चेतना में प्रतिभात चरम सत्य अनुसन्धान की प्रथम अवस्थाओं से ही विद्यमान रहता है। ऋषि चेतना की जागर्ति साधन से होती है जब तक बुद्धि 'ऋतम्भर तंत्र प्रज्ञा" की अवस्था प्राप्त नहीं करती तब तक वह 'रहस्य' का उद्घाटन करने में समर्थ नहीं होती। छायावाद और रहस्यवाद की प्रवृत्तिओं में विशिष्ट अन्तर यही है कि छायावाद कल्पना के आधार पर अनुसन्धान करता है और रहस्यवादी साधना के बल पर। जब साधक सत्य के अनुशीलन में ऊपर उठकर सत्य में डोलता दिखाई पड़ता है तब वह रहस्यवादी हो जाता है। रहस्यवादी में ऋषि चेतना जग जाती है और वह छायावादियों की भांति अपनी ज्ञानलब्ध ससीमता सादित्व, तथा सान्तत्व में केवल असमित्व, अनादित्व और अनन्तत्व की कल्पना ही नही करता वरन् उसकी "ऋषि चेतना में देश कालातीत असीम अनादि अनन्त द्वै अद्वितीय अपरिमाणी तत्व समुज्जवल रूप से प्रकट रहता है, अभाव रूप में नहीं, भाव रूप में'।

भारतीय दृष्टिकोण से रहस्यवादी धारा तथा छायावादी धारा में जो विभेद ऊपर उपलक्षित किया गया है किञ्चित वह विभेद अंग्रेजी के "मिस्टीसिज्म" और "रोमैन्टीसिज्म में न हो। किन्तु भारतीय रहस्यवाद की आधार शिलायें न

केवल अंग्रेजी "मिस्टीसिज्म" में ही वर्तमान हैं, वरन् फारसी के "तसव्वुफ" में भी। यों तो सूफी साहित्य में दो विचार धाराएं सुस्पष्ट हैं किन्तु उनमें विभेद करने का प्रयत्न नहीं किया गया है। वर्टरैन्ड रसेल ने अपने निबंध "मिस्टीसिज्म और लाजिक" में लिखा है कि "मिस्टी कल फिलासफी" सब काल में संसार के सभी भागों में कुछ मान्यताओं से उपलक्षित रही है। उनमें पहली मान्यता यह है कि वह दिव्यदृष्टि में विश्वास करती है। इसी दिव्यदृष्टि से संबद्ध यह कल्पना भी है कि प्रतिभात असत् प्रत्यक्ष जगत के पीछे एक सत अन्तरजगत है और इस अन्तरजगत के प्रति केवल मानव की विस्मय भावना ही नहीं होती वरन् कभी कभी यह भावना उपासना तथा पूजा बन जाती है। दूसरी मान्यता एकात्मता की है जिसमें किसी प्रकार का विभाजन नहीं। तीसरी मान्यता "काल-तत्व" के अस्तित्व का निषेध है। और चौथी मान्यता यह है कि विकार असत् है"। मैं इस निकर्ष से सहमत हूं। यदि आप आंसू के उत्तरार्ध पर मनन करेंगे तो आप 'रहस्यवादी" धारा के मूलतत्व को समझने में समर्थ होंगे। कालातीत काल, सर्वात्मवाद, ऋतम्भरा, तथा पाप की निस्सारता चारों ही उत्तरार्ध में वर्तमान हैं। सूफी-साहित्य-कारों की मनन शैली वैदिक परंपराओं से भिन्न नहीं है। "सर्वंखल्विदं ब्रह्म" तथा "एकोसत् विप्रंबहुधा वदन्ति" की छाप का एक उदाहरण देखियेः—

"देहर जुज़ जलवये यकताइये माशूक नहीं
हम कहां होते अगर हुस्न न खुदबीं होता"।

फ़ारसी के शायर नजीरी ने लिखाः—

"अक्स शक्ते फिताद दर मसकन
च वजुस्तम कसे न बूद आंजा"

(किसी की मेरे द्वार पर छाया दिखाई दी। ढूंढा तो वहाँ कोई न था) क्या रहस्यवाद की चरमसीमा ये भाव नहीं छू रहे हैं। केनोपनिषद् में "यक्ष" की आख्यायिका में भी क्या यही भाव विद्यमान नहीं। सूफी लोगों ने यौगिक क्रियाओं को भी अपनाया है। यह एक स्वतन्त्र विषय है जिसका विवरण यहां सम्भव नहीं। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि "वेदना" सूफियों का 'गम' है:—

माक से रा न शिनाकसे कि गम न शिनासद

हस्त वेगाना मरा आंकि अलम न शिनासद।

(जो वेदना से परिचित नहीं, वह मुझसे भी परिचित नहीं। वेदना से अपरिचित वह मुझसे अपरिचित है)
वे सर्वदा दिल के दाग हरे रखना चाहता है:--

"दामे दिल दर इश्क अफ़सुर्दन नमीदानद कि चीस्त

लालये ईं बाग़ पज़ मुर्दन नमीदानद कि चीस्त"

(दिलका दाग प्रेम में अच्छा होना नहीं जानता। इस बाग का लाला मुरझाना नहीं जानता)
मर्माहत होना ही उसे अमरत्व है:—

जख्मे पैकानम ब आवे जिन्दगी शोयद दहन

हर कि तीरे ऊ खुरद मुरदन नमी दानद कि चीस्त

(मेरा तीर का जख्म जीवन के पानी से मुंह धोता है। जो उसका तीर खाता है वह मरना नहीं जानता)
दर्दे दिल को वह दर्द की दवा मानता है:---

"नजीरी जिन्दगी दर दर्दे दिल जू

कि दर्दे तो मसीहाये तो वाशद"

(नज़ीरी जिन्दगी दिल के दर्द में ढूढ़ो। कारण कि तुम्हारा दर्द ही तुम्हारा मसीहा है।

उसकी मान्यता के अनुसार 'प्रेम' ही सृष्टि का कारण है।

"आलम अज इश्क दर वजूद आमद
इश्क मेमारे हस्तो बूद आमद
हरचे अहलीयते नमूदन दाश्त
हमा अज इश्क दर नमूद आमद"
नेस्त जुज इश्क वो आशिको माशूक
हरचे दर मजहरे शहूद आमद"

उसकी दृष्टि में प्रेम अनादि है:—

"इश्के मा वाकयए नेस्त की पायां गरदद
हरचे आगाज नदारद ग़मे पायानश नेस्त"

और वह समझता है कि प्रेम ही उसकी सारी कठिनाइयों को सरल कर सकता है:—

अफ़ाक अल्लह वकैदे इश्क अज़ हस्ती वर आवुर्दी
वयक मुश्किल नमूदी सहल हजारां मुश्किले मारा

और प्रेम ही उसे अमरत्व देता है:—

इश्कम नवी दे जिन्दगिये जाविदां दिहद
आं चश्मये कि गुमशदा दर वादिये मनस्त

उनकी दृष्टि में प्रेम और सौन्दर्य एक ही तत्व के पहलू हैं।

हुस्ने मा कर्द जलवये वरमा
इश्के मा दिल जेमा रबूद ईंजा
अशकी व हुस्न रा दर पर्दा नतवां दाशतन
शोला गम्माजी कुनद नाचार हरजा आतिशस्त

भक्ति रहस्य का आवरण ही उसका पर्दा है:—

इम शब खुश आशनास्त वख्यश निगाहे मा
गोया हिजाब सोख्ता अज़ वर्क़ आहे मा

उसके प्रेम में बुद्धि को स्थान नहीं:—

"ब पन्दे अक्ल तोबा कदम अज़ इश्क
खता करदम पशीमानम कुजाई"

वह कण कण में एक ही सत्ता का प्रतिभास पाता है:—

"दरी मैदाने पुर नैरंग हैरानस्त दानाई।
कि यक हगांमा आरायस्त व सद कि श्वर तमाशाई"

लौकिक से परे वह एक अलौकिक का दर्शन करता है:—

नजर गरदद हिजाब आंजा कि मन दीदार मी बी नम।
निहां अज़ चश्मे ज़ाहिर बीं तमाशाये दिगर दारम्॥

वह आत्मा को कतरा तथा परमात्मा को सागर जानता है:—

"वजहमत इत्तिसाल उफ़ तद चु पैवेन्दे बुरीद अज़ हम
ब फ़ुरसत क़तरा दरिया मी शवद् चूँ क़तरा शुद दरिया।"

वस्ल को ही वह जीवन की सिद्धि मानता है:—

मन तू शुदम तूमन शुदी मन तन शुदम चूँ जां सुदी
ता कस न गोयद वाद अजीं मन दीगरम तू दीगरी"

इस प्रकार आप देखेंगे कि सूफी-साहित्य पर भक्ति-रहस्य तथा वेदांत दर्शन दोनों की छाप है। प्रसाद ने जब इन बातों को "आँसू में दुहराया तो लोग उसे "उर्दू-फारसी" की छाया समझने लगे। उपसंहार के पहिले यह भी लिखना आवश्यक है कि छायावाद और रहस्यवाद की मनन शैली से संवद्ध "तत्त्वमसि' और 'सोहम्' आदि की व्याख्या भी है। छान्दोग्योपनिषद में "तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि" की बात आई है (वह सत्य है, वही आत्मा है, वही तू है) तथा वहीं "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, "तत्त्वमसि" की बात भी आई है। समानाधिकरण भाव, विशेष्य विशेषण भाव और लक्ष्य लक्षण भाव से यह तीन प्रकार का संबंध माना जाता है। पहले संबंध से तत् अप्रत्यक्ष चैतन्य का बोधक है और त्वम् प्रत्यक्ष

चेतन का, और दोनों का एक चैतन्य मय-ब्रह्म से तात्पर्य है। यही समानधिकरण संबंध है। "जैसे वह देवदत्त है" में पहले देखे हुए देवदत्त तथा प्रत्यक्ष देवदत्त में तादात्म्य हो जाता है। विशेषण विशेष्य संबंध में भी दोनों पदों का तात्पर्य एक वस्तु में अभिन्न रूप से हो जाता है। लक्ष्य-लक्षण में दोनों परस्पर विरोधी अर्थों को छोड़ कर अविरुद्ध चैतन्य लक्ष्य हो जाता है। अध्यारोप और अपवाद न्याय द्वारा तत् और त्वम् दोनों अर्थों का शोधन करके जिस समय "तत्त्वमासी" द्वारा अखण्ड चैतन्य का बोध हो जाता है उस समय मैं ब्रह्म हूँ इसी प्रकार की अखण्ड अन्तः करण वृत्ति चैतन्य प्रतिबिंबित होती है तब वह चित्त वृत्ति द्वारा चैतन्य द्वारा प्रकाशित होकर प्रत्यागात्मा (जीव ब्रह्म का अभेदज्ञान) अभिन्न पर ब्रह्म विषयक अज्ञान का नाश कर देती है। जैसे दीपक की प्रभा सूर्य की प्रभा के प्रकाश होने पर अपने निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार अन्तः करण वृत्ति में प्रतिबिंबित चैतन्य स्वप्रकाश ब्रह्म चैतन्य के प्रकाश करने से स्वयं अभिभूत हो जाता है और जैसे दर्पण के न रहने पर मुख प्रतिबिंब मुख ही रहता है वैसे ही उपाधिभूत अन्तः करण के न होने पर स्वप्रकाश पर ब्रह्ममात्र ही होता है। इस प्रकार ज्ञानियों को 'मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकार अनुभव होता है। ब्रह्म मन करके धारण किया जाता है ब्रह्म मन से धारण नहीं किया जाता।"

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह सब ब्रह्म सम्बंधी विविध दृष्टि कोण उपस्थित करता है। इन्हीं बिभिन्न दृष्टिकोणों से सम्बद्ध भोग्य बसुन्धरा संबंधी आस्थायें हैं तथा व्यष्टि-समष्टि संबंधी बिचार है। मानव मन की अतृप्ति सभी दशा में तृप्ति चाहती है। इस तृप्ति की खोज में वह कभी परिस्थितियों

से उलझता है कभी उससे भगता है। प्रवृत्ति-निवृत्ति का यही द्वन्द अपनी अलौकिक आस्थायें खोकर कभी द्वन्द्वात्मक भौतिक वाद की ओर भी झुकता है। आप को अनुभव होगा कि मानव-मन विश्लेषण-संश्लेषण दोनों करता रहता है। शरीर को भव-सागर की बीचियों में छोड़ उनका मन भव-सागर में किल्लोल करता है। भाव की एकदेशयिता का नाम ही विचार-धारा है। यहीं विचार धारा "वाद" शब्द से प्रतिष्ठित होती है जैसा कि मैं ने ऊपर कहा है मैं सुकवि की दृष्टि को सार्वभौमिक मानता हूँ और जिस कवि में एकदेशीयता होती है उसे यथार्थतः महाकवियों की श्रेणी में बिठाना ठीक नहीं समझता। मेरे बिचार में राजनीति तथा समाज की गुत्थियों में उलझी कविता निष्प्राण होती है जो धारा भी नहीं बनाती वरन् ऊर्मि सरीखी क्षणिक अस्तित्व के पश्चात् स्वतः विलीन हो जाती है। प्रगतिवादी-साहित्य इसी दोष से पीड़ित है। प्रयोगवादी साहित्य तो ऊर्मि का आकार भी ग्रहण करने में असमर्थ रहेगा।

"छायावादी" काब्य धारा की ओर पुनः लौटने के पूर्व मैं बताना चाहता हूँ कि काब्य जिसमें सार्वभौमिकता के प्राण नहीं बसते वस्तुतः क्षणिक होते हैं। सार्वभौमिक काब्यधारा देश काल की एक देशीयता संभाले शाश्वत सत्य की गोद में पलती है और यहीं उसे अमरत्व का बरदान देती है। सर्वाङ्ग पूर्ण साहित्य वही है जो सार्वभौमिक तथा स्थायी हो। साहित्य को सार्वभौमिक बनाने के लिए देश धर्म समाज आदि के उन भाव-भावनाओं आस्थाओं तथा बिचारों को अपनाना होगा जो संसार के प्रत्येक भाग में सामान्यतः वर्तमान हों। कौन इन्कार कर सकता है कि प्रेम और सौन्दर्य के अन्योन्याश्रित संबंध से उत्पन्न यौन-भावनायें आनन्द-लिप्सायें काल के किसी

अवस्थान पर समाप्त नहीं होने की। "हम क्या, जगत क्या. विश्व-वैचित्र्य का उद्गम क्या, जगत में इतना दुखः क्यों, मृत्यु के बाद क्या ?' आदि अनेक विचार परक समस्यायें ऐसी हैं जो अपनी शाश्वत गति से संसार के उद्गम से चली आ रही हैं और उसके पराभव तक चलती जावेंगी। जिस साहित्य में इस प्रकार के मनन-चिंतन–कल्पना-अनुभूति के अङ्कुर होंगे वह साहित्य काल के किसी अवस्थान पर नहीं मरता, उसे अमरत्व मिलता है। साहित्य जिसमें मानव को मानव बनाने की सामग्री नहीं, जिसमें जीवन दायिनी प्रसूतियों का उद्गम नहीं वस्तुतः साहित्य नहीं है। जहां तक साहित्य की शैली का संबंध है उस बिषय में भी इतना कहना पर्याप्त होगा कि कलात्मक विश्लेषण मधु-शब्द-विन्यास, संहृत, अभिव्यंजना, लाक्षणिकता, मानवीय भावनाओं का रंगीन चित्रण तथा उर्ध्वमुखी कल्पना ही साहित्यकार के साहित्य में चार चांद लगाते हैं। किंचित यह तो निर्विवाद है कि उत्तम कविता समष्टि की भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं होती वरन् व्यष्टि की। उत्तम काव्य प्राण का प्राण के प्रति अथवा महा प्राण के प्रति आत्म निवेदन है। इस दृष्टि से आत्माभिव्यक्ति, काममय अंतरंग प्रेरणा, आत्मरति भावात्मकता काव्य के प्राण हैं।

प्रकृति हमारे आनन्दानुभाव में कितनी सहायक होती है यह किसी से छिपा नहीं। यदि वर्डस्वर्थ ने लिखा Every flower that blooms can give thoughts too deep for tears, the earth, every common sight To me did seen apparelled in celetial light."

And the Alps where snows are spread
High between the clouds and the sun

And of living things each one
And my spirit which so long
Darkened this swift stream of song
Intepenetrated lie
By the glory of the sky."

सादी ने लिखाः—

वेहज रूये जेबास्त आवाजे खुश
कि ईं हज्जे नफस वीं कूवंते रुह"

(सुन्दर मुख से मधुर ध्वनि अच्छी है कारण कि उससे जीव को आनन्द मिलता है और इससे आत्मा की पुष्टि होती है)। पक्षियों का कल-कूजन, फूलों की मनोहारी मधुकारिता, पुर्णेन्दु की लहरती हुई छटा किसे आत्म विभोर नहीं करते। मानव अपने भाव का प्रतिबिम्ब प्रकृति में देखने पर विवश है। प्रकृति का मानवीकरण इसी भाव की व्यापकता का फल है। "लता बिलोकि नवहिं तरु शाखा" की बात तो गोस्वामी तुलसी दास भी कह गये हैं।

काव्य प्रायः दो प्रकार के होते हैं, आदर्शवादी और यथार्थ वादी। आदर्शवादी आदर्श का यथार्थ अनुभव चाहता है तो यथार्थ वादी यथार्थ को आदर्श भूत बनाता है। दोनों साधनों में केवल शैली का अन्तर है। दोनों साधनाओं का परिणाम रस-का परिपाक ही है।

"छायावादी साहित्य के दृष्टि कोण को समझने के लिए उपर्युक्त सभी बातों से अवगत होना आवश्यक है। इसमें सन्देह नहीं कि छायावादी साहित्य का प्रारम्भ कायावृत्तियों के प्रच्छन्न पोषण से हुआ। जैसा कि आचार्य शुक्ल का मत है।

किन्तु भाव की सृष्टि का इतिहास भी तो यही है। "सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत" में तो आचार्यों ने ही घोषित किया कि "वासना युक्त सभ्यों को ही रसास्वाद होता है" ये वासनायें नित्य तथा संस्कार जन्य होती हैं। अतएव "कायावृत्तियों के पोषण" से साहित्य का उद्गम होना कोई आश्चर्य की बात नहीं, यह तो स्वाभाविक है। कायावृत्तियों का "प्रच्छन्न" पोषण ही साहित्य में वांछनीय है। उसका नग्न चित्रण सभ्यों की मर्यादा के विमुख है। छायावादी कविता का उद्गम जैसे भी हुआ हो, हमें यह देखना है कि उसका अवसान कहां हुआ। "अगाज़ को कौन पूछता है, अंजाम अच्छा हो आदमी का"। वासनाओं (अथवा पाश्चात्य प्रतीक में मानसिक कुंठाओं) से उद्भूत साहित्य क्या घूम फिर कर उन्हीं वासनाओं में सीमित रह गया या वह द्रष्टा और दृश्य के रंग में इस प्रकार रंगा कि अन्त में वह "ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः" की सीमा भी छू आया। इसका उत्तर आप को पन्त, निराला, महादेवी, प्रसाद की परिपक्व कवितायें देंगी। यदि संपूर्ण छायावादी साहित्य का अध्ययन किया जावे तो स्थिर होगा कि छायावाद में निम्नांकित तत्व विद्यमान हैं:—

१—छाया कलुषित भाषा तथा भाव (प्रारम्भिक अवस्थाओं में)
२—शृंगारिक वर्णनों में प्राचीन का नवीन कल्पनाओं में समावेश
३—प्रकृति की ओर विशेष झुकाव तथा उसका मानवीय करण
४—वेदनावाद (विरहियों की प्रेमसाधना का आधुनिक रूप) (करुणरस का परिपाक)
५—सौन्दर्य, प्रेम आदि के वर्णनों पर आध्यात्मिकता का आवरण

६—कल्पना का विलास
७—लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता तथा प्रतीक विधान
८—अद्वैतवाद, रहस्यवाद आदि दर्शनों की छाया
९—अपरोक्ष अनुभूति की ओर झुकी अन्तः प्रेरणा
१०—आत्माभिव्यक्ति, आत्मगत भाव व्यञ्जना
११—लौकिक को अलौकिक बनाने का प्रयास
१२—विश्व-वेदना
१३—अस्पष्ट भाव व्यञ्जना
१४—कठिन शब्दावली

इस पृष्टि भूमि में प्रतिष्ठित प्रसाद का "आंसू काव्य" ऐतिहासिक दृष्टि से एक महत्व रखता है। प्रसाद का आंसू स्मृति-काव्य है। इसमें मिलन के पश्चात प्रेमविरह की कहानी है। सारा काव्य नाटकीय ढंग से उपस्थित किया गया है। पाठक को इसमें दृश्य तथा श्रव्य दोनों का आनन्द मिलता है। दुःख पूर्ण वर्तमान स्थिति के प्रारम्भिक वर्णन में "अब" अतीत को सजग करता है वर्तमान स्थिति के विश्लेषण के पश्चात कवि भाव दोल में बैठा अतीत और वर्तमान के किनारे छूता है, मिलन की स्मृति का चित्रण लाक्षणिक प्रयोगों से स्पष्ट करता हुआ, वह वियोग की यातनाओं और उपालंभ की जो झांकी प्रस्तुत करता है वह अभूतपूर्व है।

आंसू के शृंगारिक वर्णन में प्राचीन तथा नवीन शैली का मेल बड़ा ही मुग्धकर है। आंसू का उत्तरार्ध रहस्यवादी धारा में रंगा है। "मैं समुझ्यों निरधार यह जग कांचो कांच सों, एकै रूप अपार प्रतिविम्बित लखियत जहां" की तरल भावनाओं में डूबा, किस भांति लौकिक में अलौकिक की सिद्धि प्राप्त

करता है इसे कुछ वे ही समझ सकते हैं जिन्हों ने अनुभव किया हो कि 'मोहन मूरत श्याम की अति अद्भुत गति जोय, वसतु सुचित अन्तर तऊ प्रतिविम्वित जग होय"। "मेरी मानस पूजा का पावनप्रतीक अविचल हो" आदि की व्याख्या करते हुये इस पर विचार किया गया है। सर्वेभवन्तु सुखिना', बसुधैव कुटुम्बकं आदि की भावना का उद्गम रहस्यवादी धारा ही है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रसाद के पूर्व लौकिक द्वारा अलौकिक की सिद्धि का इतना सुस्पष्ट संदेश हिन्दी साहित्य को कभी नहीं मिला था और इस दृष्टि से भी आंसू का एक विशिष्ट स्थान है। किन्तु आंसू का संदेश कुछ और ही है। "यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते" की भाव धारा से विलग हो कर सती सीता सावित्री का गुण गान करते हुए भी, हिन्दी का कवि समुदाय नारी की महत्ता भूल गया। संत कवियों ने तो लिखा ही कि "नारी की झांई परे अन्धा होत भुजंग, कविरा उनकी कौन गति जो नित नारी संग"। रीतकालीन विहारी भी चुप न रह सके और बोल उठे-या 'भव पारावार है उलंघि पार को जाय, तिय छवि छाया ग्राहिनी ग्रसै बीच ही आय'। द्विवेदी युग में ही नारी को पुनः उसका वेद-विहित मूल्य देने का प्रयास प्रारंभ हो गया था किन्तु प्रसाद का कार्य इस दिशा में स्तुत्य है। "नारी तू केवल श्रद्धा है" की कल्पना में रत प्रसाद ने नारी को बड़ा महत्व दिया, नहीं नहीं नारी के महत्व के प्रति सामाजिक चेतनाओं को जागरुक किया। उन्होंने अपने नाटकों में नारी को प्रकृति स्वरूपा माना है। उन्हीं के शब्दों में "वह करुणा की मूर्ति है। दया, क्षमा, त्याग, तितिक्षा, एवं सेवा भावना की वह साक्षात प्रतिमा है। असत् को सत् में, अधमता को उदात्तता में, राक्षसत्व को देवत्व में ववंरता को सभ्यता में एवं पाप को

पुण्य में परिवर्तित करने का भार उसी पर है"। आंसू की पंक्तियों में नारी-असि का इसी दृष्टि कोण से वर्णन किया गया है। मानव कुलटा के प्रति भी प्रेम की आस्थायें जगा कर प्रेम साधना में सफल हो सकता है यह आंसू का महानतम संदेश है। यदि आप परकीया राधा की मीमांसा से परिचित होंगे तो आप को इस संदेश के सनातनत्व में भी सन्देह न होगा।

आजमगढ़
२१ मार्च ५४

"शैदा"

आँसू

व्याख्यात्मक आलोचना

"जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति सी छाई
दुर्दिन में आंसू बन कर
वह आज बरसने आई"

पर्युक्त पंक्तियां "आंसू" के प्रथम पृष्ट पर अङ्कित हैं जैसे ये आंसू-मुक्ता-माल की सुमेर हों। अज्ञात-चेतना के मर्मज्ञों से छिपा नहीं कि मानव-मन के एक कोने में छोटी से छोटी अनुभूति का सूक्ष्माति-सूक्ष्म आभास अङ्कित रहता है। इसी को हम "संस्कार" का नाम देते हैं। अज्ञात-चेतना में केवल वर्तमान जीवन के ही संस्कार

नहीं होते वरन् पूर्व जन्म के भी। अज्ञात चेतना के लिए कोई भी बात 'विगत' अथवा 'भूत' नहीं होती। उसका ज्ञान अखण्ड होता है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक अनुभूति अज्ञात-चेतना के लिए शाश्वत वर्तमान है जिसमें जाति, देश और काल का कोई व्यवधान नहीं। यौगिक क्रियाओं से अज्ञात-चेतना में विराजमान छोटी से छोटी अनुभूति की स्मृति जगाई जा सकती है। अज्ञात चेतना में विद्यमान कोई भी बात किसी विशेष घटना से हमारी जाग्रत चेतना में आ बैठती है, इसी को हम "स्मृति" कहते हैं। पातञ्जल योग दर्शन के अनुसार क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेदवाली वृत्तियां पांच प्रकार की होती हैं (१) प्रमाण (२) विपर्यय (३) विकल्प (४) निद्रा (५) स्मृति। "अनुभूत विषया संप्रमोषः स्मृतिः" अर्थात अनुभव किये हुये विषय का न छिपना (प्रकट हो जाना) 'स्मृति' है। "जाति देश काल व्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्वात" के अनुसार जाति, देश, काल का व्यवधान रहने पर भी कर्म के संस्कारों में व्यवधान नहीं होता क्यों कि **स्मृति** और **संस्कार** दोनों एक रूप होते हैं। मानव के शुक्ल, कृष्ण तथा शुक्लकृष्ण कर्मों से उनके फल भोगानुकूल वासनाओं की अभिव्यक्ति होती है। ये वासनायें अनादि हैं। क्यों कि प्राणी में अपने बने रहने की इच्छा नित्य रहती है। वासनाओं का फल पुनर्जन्म, आयु और भोग है। आश्रय चित्त है और शब्दादि विषय-आलम्बन है। वासनायें इसके सम्बन्ध से संगृहित होती हैं। अज्ञात-चेतना की रहस्यमयी गुत्थियों में उलझे हुये विद्वान फ्रायड तथा युंग जिसे "रिप्रेशन" (दमन-क्रिया) का नाम देते हैं वही वासनाओं की सृष्टि की क्रिया है। जब योग साधनों से इन (वासनाओं) का अभाव हो जाता है तब कर्मों में फल देने की सामर्थ्य नहीं रह जाती, चित्त अपने कारण में विलीन हो जाता है। इस प्रकार हेतु, फल

आश्रय और आलम्बन इन चारों का अभाव होने से वासनाओं का अभाव हो जाता है। यही तो है मनोग्रंथियों का रेचन। "आँसू" काव्य को समझने के लिए उपर्युक्त विचार-धारा से परिचित होना परमावश्यक है। यह तो नहीं कि मैं "आँसू" काव्य में किसी 'आध्यात्मिकता' का आरोप चाहता हूं अथवा मैं उसे "उपमिति कथा" मानता हूँ किन्तु मेरे विचार से "आँसू" के कवि के मनन के पीछे एक ऐसी मनोवैज्ञानिक तथा यौगिक विचार-धारा है जिसे भुला कर हम "आँसू" के किसी भी स्थल का यथार्थ अर्थबोध नहीं प्राप्त कर सकते। श्री किशोरी लाल गुप्त ने "प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन" में लिखा है: — "आँसू का द्वितीय संस्करण अतीत की स्मृति का काव्य है" किन्तु उन्होंने यह भी लिखा है कि परिवर्द्धित अंश के अध्ययन से तीन बातें स्पष्ट होती हैं (१) इनमें कहीं रहस्यवाद की झलक नहीं है (२) बाद की सभी पंक्तियों का मूल मन्त्र है--विश्वकल्याण (३) इनमें भावोच्छ्वास की कमी है, चिन्तन की अधिकता है।" प्रत्येक व्यक्ति जो यौगिक विचार-धारा तथा रहस्यवाद की मींमासाओं से परिचित है गुप्त जी के इस निष्कर्ष का प्रतिवाद करेगा। मैं "आँसू" को विरहियों की प्रेम-साधना का ही आधुनिक रूप मानता हूं।

आँसू का प्रथम छन्द है: —

"इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती"

"आंसू" की इन प्रथम पक्तियों में पुस्तक के विषय की पूर्ण व्यञ्जना निहित है। पुस्तक 'नगण' से प्रारम्भ होती है जिसका

देवता "स्वर्ग" तथा फल "सुख" है। १४, १४ के विराम पर २८ मात्रा के छंद का प्रयोग किया गया है। इस छंद का प्राचीन नाम "आनन्द" है यद्यपि "नवीन पिंगल" के रचयिता श्री अवध उपाध्याय ने इसे "आंसू-छंद" का नाम दिया है। 'करुणा-कलित-हृदय' का टुकड़ा बताता है कि काव्य का स्थायी भाव करुणा है अतएव उसमें 'करुण-रस' मिलेगा। करुण-रस को कविवर भवभूति ने प्रधान रस माना है। उनका कहना है:--एको-रसः करुण एव विवर्त भेदात्' अर्थात अन्यरस करुण के ही रूप विपर्यय हैं। करुण-रस करुण-विप्रलंभ का प्राण है। प्रेम में वियोग की अनुभूतियों का नाम करुण-विप्रलंभ है। 'विकल' शब्द में 'वि' उपसर्ग वियोग का बोधक है। "हाहाकार" शब्द बताता है कि दुखी मन दर्द से बेचैन होकर अधीर हो उठा है। "कलित" और विकल शब्द बताते हैं कि पहले पूर्णत्व था अब उसमें न्यूनता आ गई है। कवि की पूर्वस्थिति का परिचय 'करुणा कलित हृदय' देता है। प्रेम के पश्चात वियोगावस्था की मन; स्थिति का अंकन कवि ने आगे चलकर (रोती करुणा कोने में) किया है। इस प्रकार का तारतम्य "आंसू" में पूर्ण व्यापकता से वर्तमान है अतएव "आंसू" एक सुन्दर 'प्रबन्ध काव्य' है और जब तक पूरे काव्य में एक सूत्रबद्ध भाव-कथा का दर्शन करने में पाठक समर्थ नहीं होता तब तक उसका 'आंसू' का अध्ययन अधूरा ही रहेगा। '-करुणा-कलित-हृदय" में एक यह भी व्यञ्जना निहित है कि प्रेम करने के पूर्व कवि के मन की वृत्ति 'सात्त्विकी' थी। माया त्रिगुणमयी है। "रजस् क्रिया शक्ति, तमस् स्थिति तथा निरोध शक्ति है और सत्त्व प्रकाश शक्ति तथा साम्य सुषमा शान्ति शक्ति है। रजस् से चेष्टा उत्पन्न होती है, उद्यम उद्योग होता है, काम क्रोधादि होते हैं। तमस् से जाड्य, आलस्य, निद्रा, भूल, भ्रान्ति, मोह तथा

अशान्ति का उद्भव होता है। सत्त्व से ज्ञान, विज्ञान, विद्या, सत्यवादिता, न्याय निष्ठा, सारे सद्भाव प्रेम, मैत्री, करुणा उत्पन्न होते हैं"। कवि की पूर्वावस्था (तब) सत्त्व प्रधान थी, और वर्तमान अवस्था (अब) तम प्रधान है कारण कि उसने "माया की छाया में वना विश्वास" बढ़ाया। उसकी साधना पुनः सात्त्विकी मनोवृत्ति जगायेगी वेदना पूर्ण हृदय को संवेदनशील बनाकर। "आंसू" के परिवर्धित अंश में इसी सात्त्विकी मनोवृत्ति के जगाने की क्रिया का वर्णन है। रहस्यवाद की अन्तिम परिणति इसी उत्सर्गशीला-सात्त्विकी मनोवृत्ति को जगाना है। "आंसू-काव्य" नाटकीय ढंग से प्रारंभ होता है। "क्यों" शब्द ने पूरी व्यञ्जना को रहस्यात्मक रूप दे दिया है जैसे कवि अपनी मनः स्थिति को स्वयं न समझ रहा हो। कथोपकथन या स्वगत कथन को 'क्यों' का प्रयोग कितना रस बोझिल कर देता है इसे कुछ कविवर गुरुभक्त सिंह ही जानते हैं तभी तो उन्होंने "नूरजहां" का प्रारंभ इसी 'क्यों" से किया [क्यों मुरझाई हुई प्रिये हो कैसे बुझा हुआ है दिल]। क्यों प्रश्नात्मक भी है, विस्मयसूचक भी। पाठक को इस "क्यों" का उत्तर आगे मिलेगा, इससे उसकी उत्सुकता जग जाती है और वह समाधान ढूंढ़ने के लिए विह्वल हो उठता है। [प्रिय प्रवास के चतुर्थ सर्ग में इस "क्यों" के सुन्दर प्रयोगों को कभी अवश्य देखें]। फारसी के एक कवि ने लिखाः—

"मी गिरियम व अज गिरिया नूं तिफ्ले खबरे नेस्त
दरदिल हविसे हस्त नदानम कि कुदाम हस्त"

[मैं रोता हूँ और अपने रोने का कारण उसी भांति नहीं जानता जैसे छोटा बच्चा। मेरे मन में कोई अभिलाषा है किन्तु नही जानता कि वह कौन सी अभिलाषा है]।

इसी भांति कवि अपनी वर्तमान "विकलता" को नहीं समझ पा रहा है। उसे कोई कमी खटक रही है, किसी अभाव का अनुभव हो रहा है। अभाव की यही कसक वेदना वाद की आधार शिला छायावाद का मूल मंत्र है।

कवि कहता है मेरा भोगसागर रूपी हृदय करुणा से भरा हुआ अपनी प्राकृत अवस्था में कलकल निनादी गति से बह रहा था। किन्तु न जाने क्यों उसका वह स्वच्छंदगति में बहता संगीत सम्बाधित हो गया है, उसकी कड़ियां टूटी हुई हैं, जैसे उसमें कोई दोष आगया हो, कोई कमी हो गई हो। जैसे झंझा से संक्षुब्ध होने पर समुद्र का संगीत गरज में परिवर्तित हो जाता है उसी भांति वेदना से क्षुभित होकर मेरे स्वरों में हाहाकार भर गया है। मेरे करुणार्द्र हृदय की इस विकलता का क्या कारण है, वह पूछ उठता है अपने मन से। कवि में जब अपनी वर्तमान दशा की चेतना जगती है तो वह अपनी दशा पर स्वयं चकित होता है। वह समझ नहीं पा रहा है कि ऐसा क्यों हुआ? जिसने कल तक मग में पलक-पांवड़े बिछाये थे उसने सहसा क्यों आखें फेर लीं? मनोभाव की करवट में टीस चुभन का डोलना था कि मन अशांत हो गया। संगीत का अवरोह 'तीव्र' की अपेक्षा करता है। प्रेम भी तो जीवन का संगीत है फिर दुखं मन के स्वरों में हाहाकार का उद्वेजन भर जाना स्वाभाविक है। अनुभव में आये हुए विषयों के जो संस्कार चित्त में पड़े हैं उनका किसी निमित्त को पाकर स्फुरित हो जाना ही 'स्मृति' है। यह वृत्ति भी अन्य वृत्तियों की भांति दो प्रकार की होती है (१) क्लिष्ट जिससे भोगों में राग-द्वेष उत्पन्न होता है। (२) अक्लिष्ट जिससे भोगों में विराग उत्पन्न होता है। वर्तमान दुःखद अवस्था में बीती सुख पूर्ण घड़ियां याद आ ही जाती हैं। सुभद्रा कुमारी चौहान के शब्दों में:—

'सुख को मधुर बनाने वाले
दुख में भूल नहीं सकते
दुख में कसक उठूँगी प्रिय
मुझको भूल नहीं सकते"

स्मृति का चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में देखिए:—

'सूनी मध्य निशा में जिस दम तारावलियां रोतीं
मेरे भग्न हृदय में सहसा बहु पीड़ायें होतीं
रुंध सा जाता कण्ठ तनिक में है आँखें भर जातीं
सुख की देती स्मृतियां बीते की याद दिलातीं"

जब अतीत का तिरोभाव हो जाता है तब स्मृति द्वारा ही मन अतीत के दर्शन करता है। अंग्रेजी के विख्यात कवि "शैली" ने लिखा:—

"राइज मेमोरी एण्ड राइट इटस् प्रेज
अप—टू दाई वोन्टेड वर्क ? कम, ट्रेस
दि इपीटैफ आफ ग्लोरी फ्लेड
फार नाऊ दि अर्थ हैज चेन्जड् इटस् फेस
ए फ्राउन इज आन दि हेवन्स ब्राऊ

तथा टी० मूर० ने भी लिखा:—

'फान्ड मेमोरी ब्रिंगस् दि लाइट
आफ अदर डेज यराउंड मी"

ऊपर संस्कार की मीमांसा करते हुए बताया गया है कि प्राणी जो कुछ कर्म करता है एवं अपनी इन्द्रियों तथा मन बुद्धि द्वारा जो कुछ अनुभव करता है वह सब का सब उसके अन्तः करण में संस्कार रूप में संचित रहता है। उक्त संस्कार दो प्रकार के होते हैं। एक वासना रूप जो स्मृति के हेतु हैं दूसरे धर्माधर्म रूप जो कि पुनर्जन्म आयु और भोग के हेतु हैं।

'आँसू' की उपर्युक्त प्रथम चार पंक्तियों में "हृदय" का उल्लेख है। 'हृदय' एक शारीरिक अवयव है। यही 'हृदय' गर्त के आकार वाला कमल है जो चित्त का स्थान है। स्थूल जगत में जो 'हृदय है वही भाव जगत में "मानस" है।

जिस समय हृदय सागर में वेदना की झंझा से एक कोलाहल मचा हुआ है उसी समय 'मानस सागर' में भी एक प्रतिक्रिया हो रही है। स्मृति के स्फुरण का चित्रण कवि आगे वाली पंक्तियों में यों करता है —

'मानस सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें
कल कल ध्वनि में है कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें'

स्मृति के स्फुरण का इतना सजीव वर्णन किञ्चित ही और कहीं उपलब्ध हो। "कहती" शब्द के प्रयोग ने एक रूप खड़ा कर दिया है जैसे कोई कानों में कुछ भनक रहा हो। 'लोल लहर" तथा 'कल-कल ध्वनि' की ध्वन्यात्मकता कितनी मनोहारिणी है। छायावाद की व्याख्या करते हुये स्वयं प्रसाद ने बताया है कि छायावाद प्रणाली की विशेषतायें हैं "ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति"।

विचार की दृष्टि डालने पर उपर्युक्त पंक्तियों में ये सभी गुण मिलेंगे। वियोग के दुःख की तीव्रता के साथ स्मृति के सुख की कोमलता का अनुभव ही 'वेदना" की साधना का प्राण है। कवि कुल गुरु कालिदास का निम्नाङ्कित श्लोक इस सम्बन्ध में विचारणीय है.—